वर्तमान शिक्षा पद्धति में योग शिक्षा की उपादेयता (राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 के आलोक में)

डॉ. अरुण कुमार साव*

सारांश -

शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य का उर्ध्वगामी व सर्वांगीण विकास करना है। शिक्षा की व्याख्या करते हुए स्वामी विवेकानंद जी ने कहा है कि शिक्षा का अर्थ है उस पूर्णता को व्यक्त करना जो सब मनुष्यों में स्वाभाविक रूप से विद्यमान है। इन अर्थों में शिक्षा मनुष्य के संपूर्ण व्यक्तित्व को विकसित करती है या उसके विकास की पृष्ठभूमि बनाती है। स्वतंत्र देश के युवा नागरिकों में आवश्यक नैतिक, चारित्रिक तथा बौद्धिक गुणों का विकास होना चाहिए। उतना विकास करने में हमारी आज की शिक्षा पद्धति असमर्थ सिद्ध हो रही है। समाज तथा विश्व में मानव के प्रति जो दृष्टिकोण एक विकासशील देश के उत्तरदायी नागरिक में होना आवश्यक होता है, उसे उत्पन्न करने में भी यह आधुनिक शिक्षा लगभग असमर्थ प्रतीत होती है। वर्तमान समय में गला काट प्रतियोगिता विद्यार्थियों के मन को घोर अवसाद की ओर ले जा रहा है। जिससे विद्यार्थी का मन अत्यंत क्षुब्ध व अशांत होकर गहन बोझ का अनुभव करता है। जो वर्तमान में विद्यार्थियों के मध्य आत्महत्या कर लेने का प्रमुख कारण बना हुआ है। गीता का उद्घोष है कि अशान्तस्य कुतः सुखम्।

भारतीय जीवन परम्परा में योग शिक्षा ही एक मात्र ऐसा साधन है जो मनुष्य के अर्न्तनिहित शक्तियों का जागरण कर आत्म साक्षात्कार करने हेतु मददगार हो सकती है। महर्षि व्यास पातंजल सूत्र भाष्य में कहते है - योगः समाधिः अर्थात योग समाधि है। समाधि अर्थात सम्पूर्ण एकीकरण शारीरिक, मानसिक, भावात्मक और आध्यात्मिक रूप से। महर्षि पतंजलि अपने योगसूत्र में वर्णन करते हैं कि योग स्व की स्वयं के स्वरूप में स्थिति है अर्थात् आत्म साक्षात्कार, व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास का एकमात्र मार्ग है।

कूट शब्द :- शिक्षा, शिक्षापद्धति, योग, योगशिक्षा, राष्ट्रीय शिक्षानीति, व्यक्तित्व, सर्वांगीण विकास, नैतिक, चारित्रिक, बौद्धिक गुण, अवसाद, आधुनिक शिक्षा, समाधि, आत्म साक्षात्कार।

प्रस्तावना -

बौद्धिक दृष्टि से आज का मानव प्राचीनकाल की तुलना में कई गुना आगे है। प्रतिभा के चमत्कार सर्वत्र दिखायी पड़ रहे हैं। पिछली एक सदी की वैज्ञानिक उपलब्धियों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है जैसे मानवी प्रगति ने सदियों आगे की बड़ी छलांग लगा ली हो। एक सदी पूर्व के मनुष्य जब बीते जमाने की तुलना आज के युग से करते हैं तो उन्हें सब कुछ चमत्कारिक प्रतीत होता है और सहज ही यह विश्वास नहीं होता कि बदले रूप में यह पुरानी ही दुनिया है। एक ओर बौद्धिक विकास और उसकी असाधारण उपलब्धियों को देखकर पुलकन होती है तथा मानव का भौतिक विकास एवं उत्थान की ओर पुरुषार्थ प्रशंसा करने योग्य प्रतीत होता है परन्तु दूसरे ही क्षण जब मनुष्य की वर्तमान मानसिक स्थिति पर नजर जाती है तो यह प्रशंसा करने की अभिलाषा लुप्त हो जाती है।

बाह्य परिस्थितियों की दृष्टि से संसार में घटित होने वाले बहुत कुछ परिवर्तनों के द्वारा प्रतिकूलताओं को अनुकूलित किया गया है परंतु मनुष्य के साथ मानसिक परिपेक्ष्य में उल्टा ही हुआ है। मानसिक सन्तुलन की दृष्टि से इक्कीसवीं सदी का मानव एक सदी पूर्व के मानव की तुलना में अधिक असन्तुलित है। उसकी प्रसन्नता, सरसता, प्रफुल्लता, सुख और चैन नजाने कहां खो गया है ! तनाव ग्रस्त, उत्तेजित, उद्विग्न, चिन्तित, विक्षिप्तों की ही मात्रा वर्तमान पीढ़ी के मध्य बढ़ती दिखायी पड़ रही है। बहुसंख्यक आबादी को मानसिक चिन्ता एवं असन्तोष की अग्नि में जलते सहज ही सर्वत्र देखा जा सकता है। ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे जैसे साधन सुविधाएं बढ़ रही हैं, उसी अनुपात में मनष्य की सुख शान्ति भी छिनती जा रही है। यह इस बात का परिचायक है कि विकास के नाम पर हमसे कहीं कोई भारी भूल हो रही है।

आज जब हम पढ़े-लिखे तथाकथित शिक्षित, सभ्य और सुसंस्कृत मानव समुदाय में निराशा, कुण्ठा, चिंता, तनाव, असंतोष, असुरक्षा की भावना एवं आत्महत्या जैसी समस्याओं को देखते हैं तो बड़ा दुःख होता है। विद्वान, विशेषज्ञ तथा समाजविद इन समस्याओं के मूल में जब सूक्ष्म अवलोकन करते हैं तो एक ही बात समझ में आती है कि कहीं न कहीं हमारी शिक्षा पद्धति में आमूलचूल परिवर्तन की आवश्यकता है। आज की शिक्षा का क्षेत्र भौतिक जगत की उन्नति तक सिमट कर रह गई है। परिणामस्वरूप नैतिक मूल्यों के प्रति उदासीनता दिखाई पड़ती है। हम शिक्षा के समग्र उद्देश्य से विमुख हो गये हैं।

- **शिक्षा का अर्थ -**

नौकरी या जीविकोपार्जन का साधन है, यही परिभाषा प्रत्येक व्यक्ति के मन में समाई हुई है। बच्चे के मन में पढ़ाई के पूर्व से ही अभिभावक यह विचार बोना शुरू कर देते हैं कि उन्हें नौकरी करनी है। अभिभावक पढ़ाते भी इसीलिए हैं कि उनका बच्चा पढ़कर नौकरी करेगा। आजीविका की दृष्टि से निश्चिन्त रहेगा। हर महीने नियत समय पर वेतन मिल जाया करेगा और महीने भर का निर्वाह निश्चिन्ततापूर्वक हो जाएगा। जब नौकरी ही उनका एकमात्र सपना था और वह टूट जाता है, तो लगता है मानो जमीन पैरों तले से निकल गई। सब ओर अन्धकार ही

दिखता है। हमने कला-कौशल, व्यक्तित्व को विकसित करने एवं जीवन जीने की विधा को सीखने का प्रयत्न नहीं किया, जिससे नौकरी न मिलने की दशा में उसके सहारे अपने जीवन निर्वाह की समस्या का समाधान किया जा सके। इस स्थिति में अचानक जब अवरोध सामने आ खड़ा होता है तो सूझ नहीं पड़ती है कि इसका हल किस प्रकार निकलें? जब हल नहीं निकलता तो स्थिति अर्धविक्षिप्तों जैसी हो जाती है। आत्महीनता चढ़ दौड़ती है, घुटन अनुभव होती है और मृगतृष्णा में मरने वाले हिरन जैसी मनःस्थिति बन जाती है। इन्हीं कुण्ठाओं से जीवन घिर जाता है। हमें इस समस्या के समाधान के लिए नये सिरे से अपने शिक्षा पद्धति के बारे में चिन्तन एवं निर्धारण करने की आवश्यकता है।

- **शिक्षा का वास्तविक स्वरुप**

शिक्षा मनुष्य के विकास की एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। मनुष्य को प्रकृति ने अन्य प्राणियों से अलग स्वतन्त्रता प्रदान की है, जिसके कारण उसे प्रकृति के बन्धनों और मर्यादाओं को लांघने की छूट मिली है। मनुष्य यह अतिक्रमण उर्ध्वदिशा में करता है तो उसकी प्रगति होती है और प्रकृति की मर्यादाओं का निम्नस्तरीय उल्लंघन किया तो वह व्यक्ति के पतन का कारण बनता है। शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य का उर्ध्वगामी विकास करना है।

"शिक्ष्यते विद्योपदीयतेऽनायेति शिक्षा" अर्थात् मनुष्य जिस साधन से विद्या (ज्ञान) का उपार्जन करता है, उसी का नाम शिक्षा है। मनुष्य के अन्दर निहित मनुष्यता का विकास कर उसे पूर्ण मानव बनने तक पहुँचाना, उसके चिंतन, चरित्र, आचरण में, गुण एवं कर्म में उत्कृष्टता का प्रकट करना ही शिक्षा का मूल उद्देश्य है।

शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य मानव के अन्तर्निहित सद्गुणों को विकसित करना है। अंग्रेजी भाषा में शिक्षा को *'एज्यूकेशन'* कहते हैं। यह लैटिन शब्द *'ऐज्यूकेयर'* शब्द से बना है, जिसका तात्पर्य है - व्यक्ति की व्यक्तिगत क्षमता का, जीवन को श्रेष्ठ बनाने के लिए पूरी तरह सदुपयोग करना। व्यक्तिगत क्षमता मनुष्य के अंतःकरण में ज्ञान के रूप में निहित है। इस ज्ञान के प्रकटीकरण में अपने को लगाने वाला विद्यार्थी या शिक्षार्थी है तथा इस प्रक्रिया में सहायता करने वाला गुरु या शिक्षक कहलाता है।

विष्णु पुराण में एक प्रश्न आता है - कः विद्याः? ऋषि उसके उत्तर देते हैं *"सा विद्या या विमुक्तये"* (Gita Press, n.d. Verse 1.19.41) अर्थात विद्या वही जो मुक्ति दिला सके। मुक्ति किससे? भ्रम-जंजालों से, इन्द्रियों की दासता से, स्वयं की दैन्यता से, रोग, शोक, द्वेष, पाप, दीनता, दासता, गरीबी, बेकारी, अभाव, अज्ञान, दुर्गुण, कुसंस्कार एवं हर उस चीज से जो जीवन बोध में अवरोध उत्पन्न करती है आदि से मुक्ति प्राप्त हो सके।। विद्या की परिणिती को नीतिशास्त्र में कुछ इस तरह बताया है—*विद्या ददाति विनयं, विनयं ददाति पात्रतां। पात्रत्वां धनमाप्नोति, धनात धर्मततो सुखम्॥* अर्थात विद्या विनयशीलता प्रदान करती है, विनय से पात्रता निखरती है, पात्रता से धन मिलता है, धन के द्वारा धर्म, पुण्य प्राप्त होता है और फिर इन सब प्रयोजनों के हस्तगत होने में सुख ही सुख है। हमारा बच्चा स्कूल में विद्या पढ़ रहा है या

कुछ और बटोरने में निरत है, इसकी परीक्षा यह होनी चाहिए कि उसमें विनयशीलता आई या नहीं। यहाँ विनयशीलता का अर्थ मात्र नम्रता नहीं वरन् शालीनता-सज्जनता से है। विद्यालयों का प्रथम कर्त्तव्य यही है कि छात्र को शालीनता, शिष्टता, सज्जनता, नागरिकता के आमूल-चूल कर्तव्यों का प्रशिक्षण दें, जिनके आधार पर मनुष्य सच्चे अर्थों में मनुष्य बनता है।

प्रख्यात अध्येत्ता आर० एन० पाणि ने अपनी कृति *'इन्टीग्रल एजूकेशन थाट एण्ड प्रैक्टिस'* (Paani, 1987) में प्रशंसनीय प्रयास किया है। उनके अनुसार मानवी प्रकृति को प्रशिक्षत रूपान्तरित करने के तीन सोपान हैं-

1. **शिक्षा (Knowledge),**
2. **कला (Skill),**
3. **विद्या (Wisdom)**

प्रत्येक सोपान परस्पर अन्योन्याश्रित होते हुए भी अपने में एक विधा है। पहली दोनों की सार्थकता इसी में है कि तीसरी को उपलब्ध करा सकें।

उपनिषदों ने विद्या को दो वर्गों में बाँटा है, अपरा विद्या व परा विद्या। पहले में शिक्षा व कला की समस्त विधाओं का समावेश है। दूसरे में जीवन बोध के सूत्रों का। इन सूत्रों को उचित ढंग से समाविष्ट करने पर जीवन का प्रत्येक कार्य आत्मोन्नति का साधन बनता है।

कोई व्यक्ति अथवा वर्ग विशेष नहीं समूची मानव जाति तीव्र रूप से अभीप्सित है, उस विद्या के लिए जिसे भगवान कृष्ण ने *'अध्यात्म विद्या विद्यानाम '* (श्रीमदभगवद्गीता, 502 श्लोक सं. 10.32) कहा है। शास्त्रकारों ने जिसे *'नास्ति विद्या समचक्षु'* कहकर जीवन दृष्टि देने वालों से अनुपमेय ठहराया है।

अतीत के भारत में गुरुकुल आरण्यक परम्पराओं के माध्यम से इस संजीवनी विद्या का विस्तार होता था। इन विद्या विस्तारकों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। वसुन्धरा के प्रत्येक कोने में जिन्दगी की ऊँचाइयों-गहराइयों की परख करवाने वाले आचार्य शंकर, गौतम बुद्ध, ऋषि दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, ईसा, फ्रांसिस, संत पाल, लाओत्से, कन्फ्यूशियस जैसे जीवन विद्या के आचार्य हुए हैं। जिन्होंने कुम्हलाई- मुरझाई मानवता पर अपनी संजीवनी विद्या का प्रयोग कर *“विद्यायाऽमृतमश्नुते ”* (Sanatan, n.d.यजुर्वेद श्लोक सं. 40.41) के कथन को चरितार्थ किया है।

इन अर्थों में शिक्षा मनुष्य के समग्र व्यक्तित्व को विकसित करती है या उसके विकास की पृष्ठभूमि बनाती है। तब शिक्षा को केवल रोजी-रोजगार प्राप्त करने का साधन कैसे समझा जा सकता है? जो शिक्षा केवल इतना ही प्रयोजन पूरा करती हो और जीवन के अन्य अंगों को स्पर्श नहीं करती, उसे स्वामी विवेकानन्द ने शिक्षा मानने से ही इन्कार कर दिया है- "जो शिक्षा साधारण व्यक्ति को जीवन संग्राम में समर्थ नहीं बना सकती, जो मनुष्य में चरित्रबल, परहित भावना तथा सिंह के समान साहस नहीं ला सकती, वह भी कोई शिक्षा है? जिस शिक्षा के द्वारा जीवन में अपने पैरों पर खड़ा हुआ जाता है वही है सच्ची शिक्षा।" (निखिलानन्द & विदेहात्मानन्द, 2004) शिक्षा से

तात्पर्य मूलत: व्यक्तित्व के समग्र विकास से है। विद्वानों और मनीषियों ने शिक्षा की जो परिभाषाएँ दी हैं, उन सबका समन्वित अर्थ व्यक्तित्व का समग्र विकास है। स्वामी विवेकानन्द ने कहा है कि मनुष्य की अन्तर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्ति प्रदान करने वाली प्रक्रिया का नाम ही शिक्षा है। (Vivekananda, 2016, p. 6) इन परिभाषाओं को मानक मानकर वर्तमान शिक्षा पद्धति की कसौटी पर कसा जाये तभी वास्तविक शिक्षा का स्वरुप उभर कर सामने आएगा।

प्रसिद्ध दार्शनिक काण्ट के अनुसार "शिक्षा व्यक्ति की उस पूर्णता का विकास है, जिस पर वह पहुँच सकता है।" शिक्षाशास्त्री रस्क भी इन्हीं विचारों से सहमति व्यक्त करते हुए कहते हैं- "शिक्षा का उद्देश्य व्यक्तित्व को ऊँचा उठाना है। मानव जाति को इस योग्य बनाना है कि परस्पर आत्मीयता का भाव विकसित हो।" शिक्षाविद बी० रेमाण्ट स्पष्ट करते हैं कि "शिक्षा विकास का वह क्रम है जिससे व्यक्ति अपने को धीरे-धीरे विभिन्न प्रकार से भौतिक, सामाजिक वातावरण के अनुरूप बना लेता है, साथ ही नैतिक मूल्यों को अपनाता है।"

- **वर्तमान की शिक्षा पद्धति -**

आज की परिस्थिति में सब कुछ सीधे से उल्टा हो गया है। आज शिक्षा का उद्देश्य जीवन निर्माण नहीं वरन् मात्र जीवनयापन का माध्यम बनकर रह गया है। ऐसी शिक्षा को विद्या नाम नहीं दिया जा सकता। आजकल शिक्षा की जो पद्धति है, उससे इन आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं होती। किसी विशेष विषय के तथ्यों को दिमाग में संग्रहित कर डिग्री प्राप्त कर लेना ही शिक्षातन्त्र का केन्द्रीय आधार बना हुआ है।

वर्तमान समय में शिक्षा, स्वाभाविक विकास क्रम रहकर अनेकानेक जानकारियों के ढेर समेटने के रूप में रह गई है। इन जानकारियों को किसी तरह मस्तिष्क में जमा लेने को ही सार्थक माना जाने लगा है। यदि इसकी सार्थकता के औचित्य पर विचार किया जाय तो हमें इसकी भूलें स्पष्टतया सामने आने लगती हैं। मात्र भौतिक जानकारियों को दिमाग में इकट्ठा कर लेना किसी तरह भी सार्थक नहीं माना जा सकता है। इसमें भी विवेकयुक्त बुद्धि का आश्रय लेने की आवश्यकता है, जिससे जीवन निर्माण, चरित्र निर्माण तथा मनुष्य निर्माण में सहायक विचारों को अनुभूत किया जा सके।

आज शिक्षा का उद्देश्य केवल अर्थ उपार्जन का साधन मात्र रह गया है वह भी काम का पूरक। परंतु प्राचीनकाल में शिक्षा का लक्ष्य धर्म और मोक्ष था। उसके साथ अर्थ और काम भी उपेक्षित नहीं थे। सर्वमान्य तथ्य है कि अर्थ और काम की उपासना से न शान्ति आ पाती है और न सन्तोष। *"अशान्तस्य कुतः सुखम्"* (श्रीमदभगवद्गीता, 502 श्लोक सं. 2.66) गीता का यह उद्घोष किसे मान्य नहीं? सुख ही तो सबका साध्य है और वह शान्ति के गर्भ से प्रसूत होता है, जो धर्म की उपासना से प्राप्त होता है। प्राचीनकाल में भी वित्त को मान्यता दी गई थी, किन्तु उससे कई गुनी महत्ता विद्या की थी। यदि विद्या का उपार्जन ठीक-ठीक हो तो आज भी इस क्रम का व्यावहारिक रूप सामने आ सकता है। विद्या तो मनुष्य को इतने उच्च आसन पर बिठा देती है कि बरबस सभी लोगों का मस्तक उसके सामने नत हो ही जाता है। विद्या जीवन जीने की कला है।

उदारता, सौम्यता, नमनीयता, परमार्थपरायणता, त्याग, सेवा, परोपकार, संवेदनशीलता, पुरुषार्थ, विद्या के ही रूपान्तरण हैं। *आत्मवत सर्वभूतेषु-परद्रव्येषु लोष्ठवत-परदाराषु मातृवत* (शर्माविश्वमित्र & हरिओम, 2013) एवं *वसुधैव कुटुम्बकम्* (Mahopnishad eGangotri Digital Preservation Trust, n.d. Chapter 4, Verse 71) के भाव विद्या की ही उत्पत्ति हैं। इसके जागरण से मनुष्यता की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाती है और मनुष्य पशुता से उबरकर देवत्व की ओर बढ़ने लगता है। अत: शिक्षा के क्षेत्र में संजीवनी विद्या के प्रति अनुराग उत्पन्न करना परम आवश्यक है।

वर्तमान शिक्षा पद्धति के उद्देश्य विमुख होने का कारण क्या है ? इन कारणों की खोज करके इनका निवारण किस प्रकार किया जाय? इन पर चिन्तन करने से यही स्पष्ट होता है कि आध्यात्मिकता का अभाव और भौतिकता का बढ़ता प्रभाव ही इस स्थिति का मूल कारण है। इनके उपयुक्त समावेश से ही स्थिति फिर सुधर सकती है। आज शिक्षा शास्त्र के अनेकानेक विद्वान भी इसी बात पर जोर दे रहे हैं। हण्टर आयोग से लेकर कोठारी आयोग व नई शिक्षा नीति से राममूर्ति आयोग तक नियुक्त किए जाने वाले सभी आयोगों और समितियों ने शिक्षा-संस्थानों में नैतिक शिक्षा प्रदान किए जाने का समर्थन किया है। वर्तमान नयी शिक्षा नीति-2020 की रिपोर्ट में सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा के लिए योग शिक्षा पर भी बल दिया गया है क्योंकि नैतिक शिक्षा, योग शिक्षा तथा अध्यात्म विद्या एक दूसरे के समानार्थी हैं।

नैतिक मूल्य मानव के व्यक्तित्व को ऊँचा उठाने वाले तत्त्व हैं। इनका समावेश आदिकाल से अध्यात्म दर्शन में रहा है और ये आज भी अपेक्षित हैं। निःसंदेह समग्र शिक्षा और नैतिक मूल्य एक-दूसरे से गुँथे हुए हैं। इसके अभाव में शिक्षा में विकृति आना स्वाभाविक है। आज छात्रों में व्याप्त हो रही चरित्रहीनता, अनुशासनहीनता, मर्यादाओं का अभाव इसी विकृति को दर्शाता है। महात्मा गाँधी ने नैतिकता की अनिवार्यता को स्वीकारते हुए कहा था, "मेरे लिए नैतिकता, सदाचार और धर्म पर्यायवाची शब्द हैं। नैतिकता के आधारभूत सिद्धान्त सभी धर्मों में समान हैं। इन्हें बालकों को निश्चित रूप से पढ़ाया जाना चाहिए।"(गांधी, 2014) प्रसिद्ध दार्शनिक एवं शिक्षाशास्त्री राधाकृष्णन ने भी इसके समावेश पर बल देते हुए कहा है कि "मानवीय मूल्य व्यक्ति की सांस्कृतिक विरासत का एक अंग है। इनको पाठ्य विषय में स्थान न देना, छात्रों को अपने जन्मसिद्ध अधिकार के एक भाग के लाभ से वंचित करना है।"

अगर इन सारी समस्याओं के मूल में दृष्टिपात किया जाय तो एक ही कारण समझ में आता है कि मानव अपनी पुरातन वैदिक शिक्षा पद्धति - जिसमें भोग और त्याग, धर्म और अर्थ, प्रेय और श्रेय, अभ्युदय और निःश्रेयस, भौतिकता और आध्यात्मिकता का संतुलित समन्वय ही जीवन का आदर्श माना जाता है, को छोड़ कर आधुनिक शिक्षा पद्धति की चकाचैंध में अविवेक का अवलंबन लेकर नरकीटक एवं नरपशु का अमानवीय जीवन जी रहा है। आचार्य श्रीराम शर्मा (शर्माआचार्य श्रीराम, 1984, p. 50) के शब्दों में मानवी सत्ता दो हिस्सों में बँटी हुई है। एक-शरीर, पदार्थ और

दूसरी-चेतना, मन, बुद्धि , अंतस्। आवश्यकता इन दोनों को पूर्णतया विकसित करने की है। किसी एक को उपेक्षित छोड़ देने पर विकास के स्थान पर समस्याएँ ही जन्म लेंगी। क्योंकि समग्र दृष्टि का अभाव एवं एकांगी प्रयत्नों के कारण ही अनेकानेक समस्याओं का जन्म होता है तथा वे संकट का कारण बनती हैं। संतुलित एवं सुव्यवस्थित विकास क्रम के लिए उन सभी पक्षों को समावेशित करना होता है जो शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक प्रगति के लिए जरूरी हों।

ऐसे में ध्यान स्वतः ही चिर-पुरातन भारतीय योग की विद्याओं पर जा टिकता है। यौगिक साधना एवं विद्या जीवन को नया आयाम देने वाली है। साधनाओं व क्रियाओं का आरम्भ इन्हीं यौगिक विद्याओं से होता है। साधनायें सकारात्मक चिन्तन को उत्प्रेरित करती हैं। सकारात्मकता व्यक्ति की नकारात्मकता पर सदैव भारी होती है ऐसी स्थिति में वैचारिक शुद्धि के साथ-साथ शारीरिक स्वास्थ्य को भी बल मिलता है।

- **योग शिक्षा**

वैदिक जीवन परम्परा में योग भारत वर्ष की सबसे प्राचीन एवं अमूल्य धरोहर है। यहां योग को जीवन साधना के रूप में अपनाया गया है। यह समस्त ज्ञान-विज्ञान, ऋतम्भरा-प्रज्ञा का ही मधुर फल है। योग ऐसी महाशक्तियों का आधार है, जिससे व्यक्तित्व के सभी आयामों- शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक का विकास होता है अर्थात् व्यक्तित्त्व का सर्वांगिण विकास। भारतीय जीवन परम्परा में योग शिक्षा ही एक मात्र ऐसा साधन है, जो मनुष्य के अन्तरनिहित शक्तियों का जागरण कर आत्म साक्षात्कार करा सकती है। महर्षि व्यास ने पातंजल सूत्र भाष्य में कहते है- *"योगः समाधि"* (Darshan yog Mahavidyalaya , 2016 Vyasbhashya, Sutra 1.1) अर्थात योग समाधि है। समाधि अर्थात सम्पूर्ण एकीकरण शारीरिक, मानसिक, भावात्मक और आध्यात्मिक रूप से। महर्षि पतंजलि अपने योगसूत्र सं. 1.3 में वर्णन करते हैं कि योग स्व की स्वयं के स्वरूप में स्थिति है (बी.के.एस.अय्यंगार,2019) अर्थात् योग का तात्पर्य है "आत्म साक्षात्कार, व्यक्तित्व का सर्वांगिण विकास"।

जीवन के आरंभ से ही मानवीय अस्तित्त्व अपने चरम उत्कर्ष को इसी योग के सहारे पाता आ रहा है। प्राचीन काल के ऋषिमहर्षियों द्वारा जो धर्म मानव जाति के उद्धार के लिए निश्चित हुआ वह योगसाधना ही है और विभिन्न प्रकार के मुख्य साधनाओं में से सर्वोत्तम एवं श्रेष्ठतम साधना भी यही है क्योंकि योग, एक जीवन शैली है, जीवन दर्शन है, जीवन जीने की कला एवं विज्ञान है, यह ध्रूव सत्य हैं कि यदि मानव धर्म में योग को सर्वथा पृथक कर दिया जाय तो मानव धर्म भी एक प्रकार से पंगु या एकांगी बनकर रह जाएगा। इसमें किंचित मात्र भी संदेह नहीं है क्योंकि योग मानव धर्म के लिए एक चक्षु के समान है। जो सृष्टि और अतिसृष्टि के गुह्यतम रहस्यों को प्रत्यक्ष कराती है, जीवन सफलता के सूत्र सूझाती है, जीवन को नया आयाम देती है, विकसित व्यक्तित्त्व का कारण बनती है, अन्ततोगत्वा जीवन को उसके परम लक्ष्य से साक्षात्कार कराती है।

स्वामी यतीश्वरानन्द (Swami Yatiswarananda, 1979) के शब्दों में इस तरह संगठित व्यक्तित्व में अहं की वैयक्तिक चेतना ब्रह्माण्डीय चेतना से लयबद्ध रहती है और यह संगठित चेतना

मन और शरीर को सहज, सक्रिय एवं सामंजस्य ढंग से निर्देशित रखती है। योग और आधुनिक विज्ञान का तुलनात्मक अध्ययन करने वाली प्रख्यात् विदुषी साधिका गेराइल्ड कोस्टर (Coster, 1968, p. 245) के शब्दों में योग पद्यति मानव जाति के लिए सार्वभौम रूप से सत्य है। और इसमें उपलब्ध सामग्री के असीम लाभ को हम प्रयोगों द्वारा जाँच सकते हैं। साथ ही वह दावा करती हैं कि योग मानसिक विकास की एक व्यवहारिक पद्यति है और वह पूर्ण आश्वस्त हैं कि महर्षि पतंजलि का योगसूत्र कुछ विशिष्ठ सूचनाएँ रखता है, जो मानवीय मन के विषय में कल्याणकारी होती हैं जिसकी पुष्टि मानवीय मन के विशेषज्ञ कार्लरोजर्स ने इस क्षेत्र में बहुतायत शोध कार्य करने की है, उनके अनुसार मानवीय स्वास्थ्य संकट के समाधान का समस्त विज्ञान योग शास्त्र में उपलब्ध है। (Sachdeva, 1978, p. 7) इस संदर्भ में मधुसदन रेड्डी (Madhusudan Reddy, 1990, p. 5) का भी कहना है कि मानसिक स्वास्थ की दृष्टि से ये पद्धति आधुनिक एवं प्रायोगिक है।

वास्तव में योग एक ऐसी वैज्ञानिक जीवन साधना पद्यति है जिसका उद्देश्य मनुष्य का सर्वांगीण विकास व समुन्नयन है। कहने का तात्पर्य यह है कि योग का उद्देश्य मानव जीवन को चातुर्दिक शान्ति एवं सुख देना है। इस तथ्य की पुष्टि हम आचार्य श्री राम शर्मा (शर्मा आचार्य श्रीराम, 1962) के इस तथ्य से कर सकते हैं। जिसमें उन्होंने यौगिक चिकित्सा के महत्व को समझाते हुए कहा है कि “मनोविकारों का प्रभाव निश्चित रुप से शारीरिक स्वास्थ्य पर पड़ता है। सीधा, सरल और स्वाभाविक जीवन सब प्रकार से शान्तिदायक और श्रेयस्कर है। काम, क्रोध, मोह, मद-मत्सर, निराशा, अवसाद, चिन्ता, भय, संशय आदि मनोविकार आमतौर से अपने भीतर से उत्पन्न होते हैं। इनकी जड़ मानसिक दुर्बलता एवं विचारों की भ्रान्ति में ही सन्निहित होती है। मानसिक विकृति मस्तिष्क के उन तत्वों को बुरी तरह नष्ट करती है जो स्वास्थ्य को सुरक्षित रखने की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी एवं आवश्यक हैं। फलतः जीवन तत्व और आयु का निरन्तर क्षरण होता रहता है। ऐसी स्थिति में यौगिक साधनायें व्यक्ति की शारीरिक और मानसिक स्थिति को संभालने में सहायक होती हैं।

इस तरह वर्तमान भौतिकवादी, विश्व दृष्टिकोण, विज्ञान एवं तकनीकी पर अधिक पराश्रयता तथा योग विहीन जीवनशैली जहाँ व्यक्तित्व की महाव्याधियों का मूल कारण है, वहीं इनके उपचारार्थ इन सब में एक आमूलचूल परिवर्तन अपेक्षित है। एक अधिक समग्र जीवनदृष्टि, एक स्वस्थ एवं संतुलित जीवन पद्धति की आवश्यकता है। इच्छा शक्ति का सम्यक विकास एवं भाव संतुलन, मस्तिष्क का समग्र विकास एक स्वस्थ, संतुलित, सामंजस्यपूर्ण जीवन के लिए अनिवार्य है और यही सब कुछ यौगिक जीवन हमें प्रदान करती है। (Nagendra & Nagarathna, 2001, p. 13). योग साधना मानवीय चेतना का विज्ञान है, जो हमारे जीवन के आंतरिक एवं बाह्य वातावरण के साथ सामन्जस्य स्थापित करता है। मस्तिष्क की कार्य क्षमता को बढ़ाता है, मनो-शारीरिक – आध्यात्मिक इम्युनिटी को मजबूत करता है, शरीर व मन को विश्राम देता है तथा जीवन को

आरोग्यता से उच्चतर चेतना की ओर अग्रसर करता है। इस प्रकार यौगिक जीवन हमें शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक रूप से परिपूर्ण सुखी, सम्मुन्नत जीवन प्रदान करता है।

- **निष्कर्ष :-**

शिक्षा के विषय में सभी मूर्धन्य विचारक एक मत होकर बताते हैं कि इसकी पूर्णता एवं समग्रता तब ही है, जब शिक्षा इन तीन लक्ष्यों को पूरा करे १. स्वावलम्बन २. व्यक्तित्व निर्माण ३.सामाजिक सद्भावना का विकास। शिक्षा व्यक्ति को जानकारी देती है और उसे जिम्मेदार नागरिक बनाती है। साक्षरता से प्रारम्भ हुई शिक्षा बड़े होने पर जब मनुष्य के मस्तिष्क का अनन्त सीमा तक विस्तार करती है तो व्यक्ति व्यावहारिक ज्ञान में प्रवीण माना जाने लगता है।
हमारे ऋषियों ने सार्थक एवं सर्वांगपूर्ण शिक्षा की बात कहते हुए शिक्षा एवं विद्या के समन्वय से ही व्यक्तित्व के विकास की प्रक्रिया सम्पन्न होते बतायी है। ऋषियों की दृष्टि में शिक्षा वह है, जो व्यक्ति की उदरपूर्णा की आवश्यकता को पूरा करती हो एवं विद्या वह है, जो व्यक्ति में सुसंस्कारिता का समावेश करती हो। दोनों मिलकर एक समग्र, समुन्नत व्यक्तित्व का निर्माण करती हैं। इस प्रकार राष्ट्र को ज्ञानवान, प्राणवान, शक्तिवान, समुन्नत और सुविकसित बनाने के लिए वर्तमान शिक्षा पद्धति में परिवर्तन और योग शिक्षा का समावेश नितान्त, अनिवार्य और आवश्यक हैं।

- **सन्दर्भ सूची**

1) Coster, G. (1968). *Yoga and Western Psychology: A Comparison*. Motilal Banarsidas.
2) Darshan yog Mahavidyalaya (Mob- +919409415011). (2016). *Yog Darshan Vyasbhashya Sutrarth Sahit*. http://archive.org/details/YogDarshanVyasbhashyaSutrarthSahit .
3) eGangotri Digital Preservation Trust. (n.d.). *Mahopanishad And Narayan Upanishad Sharada Manuscript From Kulgam E Gangotri Digital Preservation Trust*. Retrieved November 29, 2024, from http://archive.org/details/TElw_mahopanishad-and-narayan-upanishad-sharada-manuscript-from-kulgam-e-gangotri-dig .
4) Gita Press. (n.d.). *सम्पूर्ण विष्णु पुराण, संस्कृत, हिन्दी अनुवाद सहित*. Retrieved November 28, 2024, from http://archive.org/details/vishnu-puran-gita-press .
5) Madhusudan Reddy, V. (with Internet Archive). (1990). *Integral yoga psychology: The psychic way to human growth, and human potential*. Ojai, Calif.: Institute of Integral Psychology. http://archive.org/details/integralyogapsyc0000madh .

6) Nagendra, H. R., & Nagarathna, R. (2001). *New Perfection in Stress Management*. Swami Vivekananda Yoga Sansthana.
7) Paani, R. N. (1987). *Intregal Education: Thought and Practice*. Ashish Publication House.
8) sachdeva, i p (with Internet Archive). (1978). *Yoga and Depth Psychology*. motilal banarsidas.http://archive.org/details/yogadepthpsychol0000sach.
9) Sanatan. (n.d.). *Yajurved—यजुर्वेद संहिता हिंदी*. Retrieved November 28, 2024, from http://archive.org/details/Yajurved.
10) Swami Yatiswarananda. (1979). *Meditation And Spiritual Life*. http://archive.org/details/in.ernet.dli.2015.553406 .
11) Vivekananda, S. (2016). *Education*. Ramkrishna Math.
12) गांधीमहात्मा. (2014). *हिन्द स्वराज*. शिक्षा भारती.
13) निखिलनन्दस्वामी, & विदेहात्मानन्दस्वामी. (2004). *स्वामी विवेकानंद: एक जीवनी*. रामकृष्ण मठ, नागपुर.
14) बी. के. एस. अय्यंगार. (2019). *पतंजलि योग सूत्र* - http://archive.org/details/iyengarpatanjaliyogsutrahindi .
15) शर्मा आचार्य श्रीराम. (1962). *मानसिक स्थिति का स्वास्थ्य पर प्रभाव*. अखण्ड ज्योति संस्थान.
16) शर्मा आचार्य श्रीराम. (1984). *आत्मविश्वास जगायें—सफलता पाएं* (4th ed.). अखण्ड ज्योति संस्थान.
17) शर्मा विश्वमित्र, & हरिओम काका. (2013). *सम्पूर्ण चाणक्य नीति, चाणक्य सूत्र और जीवन गाथा*. मनोज पब्लिकेशन.
18) *श्रीमदभगवद्गीता*. (502). गीताप्रेस, गोरखपुर.

*सहायक प्राध्यापक, योग शिक्षा विभाग, डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, (म. प्र.)